ब्रह्मचर्य आश्रम: विद्यार्थी जीवन के नैतिक और सांस्कृतिक आधार

सौरभ धाकड़[1], डॉ. देवेन्द्र सिंह[2]
[1]शोधार्थी वैदिक अध्ययन विभाग,
भाषा, साहित्य एवं कला संस्थान
[2]विभागाध्यक्ष, वैदिक अध्ययन विभाग,
साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय
मध्य प्रदेश

DOI: https://doi.org/10.5281/zenodo.15792946

शोध सार

प्रस्तुत लेख में ब्रह्मचर्य आश्रम के महत्व और उसके पालन की महत्ता पर विस्तार से चर्चा की गई है। यह आश्रम चारों आश्रमों की आधारशिला है, जिसमें विद्यार्थी अपने भावी जीवन के लिए शिक्षा ग्रहण करता है। ब्रह्मचर्य आश्रम में विद्यार्थी को गुरुकुल में रहकर वेदाध्ययन, स्वाध्याय, और गुरु सेवा करनी होती है। इस आश्रम में विद्यार्थी के लिए त्याग, तपस्या और संयम का जीवन अपनाना आवश्यक है। लेख में महाभारत, मनुस्मृति और अन्य प्राचीन ग्रंथों के उदाहरणों के माध्यम से ब्रह्मचारी के कर्तव्यों और गुणों का वर्णन किया गया है।

ब्रह्मचर्य आश्रम का उद्देश्य न केवल विद्या प्राप्त करना है, बल्कि विद्यार्थी के चरित्र निर्माण और व्यक्तित्व विकास करना भी है। इस आश्रम में विद्यार्थी को गुरु और ज्ञान के प्रति श्रद्धा और सेवा का भाव रखना सिखाया जाता है। ब्रह्मचर्य आश्रम का पालन करने से मनुष्य की आध्यात्मिक शक्ति का विकास होता है और यह जीवन के उच्चतम शिखर को प्राप्त करने का एक महत्वपूर्ण साधन है। इस प्रकार, ब्रह्मचर्य आश्रम भारतीय संस्कृति और शिक्षा प्रणाली का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

कूट शब्द : ब्रह्मचर्य आश्रम, विद्यार्थी जीवन, गुरुकुल, आध्यात्मिक विकास, आश्रम व्यवस्था, वेदाध्ययन, गुरु-शिष्य परंपरा, शिक्षा प्रणाली, भारतीय संस्कृति।

भारतीय संस्कृति से ओतप्रोत भारत के ऋषि महर्षियों ने प्राचीन समाज को सुव्यवस्थित करने हेतु आश्रम चतुष्टय के सिद्धांत की कल्पना की और इसको चार काल में विभक्त किया। प्रत्येक काल की अवधि पचीस वर्ष मानी गई है। यह चार विभाग ही आश्रम के नाम से प्रसिद्ध हुए । आश्रम शब्द आ उपसर्ग पूर्वक श्रम् धातु से घञ् प्रत्यय लगाकर निष्पन्न हुआ है। इसका अर्थ गुरुकुल और ऋषि-मुनियों का निवास स्थान भी है। किन्तु यहाँ पर आश्रम शब्द का अर्थ मनुष्य जीवन के चार पड़ाव हैं और ये चार पड़ाव हैं— ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास ।

प्राचीन भारत का प्रायः प्रत्येक व्यक्ति इन चारों आश्रमों में रहते हुए अपनी लोकयात्रा को पूरी करता था। यह आश्रम व्यवस्था ही मनुष्य को सम्पूर्ण बनाकर उसे चरम लक्ष्य तक पहुँचाती थी। महाकवि कालिदास ने आश्रम व्यवस्था को अपनाना प्रशंसनीय मानते हुए ही अपने काव्यनायक रघुवंशियों के लिए कहा है

शैशवेभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्द्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्[i]।।

अर्थात् – शैशवावस्था में विद्या का अभ्यास करने वाले (ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाले) युवावस्था में विषयों की इच्छा करने वाले (गृहस्थ का आचरण करने वाले) वृद्धावस्था में मुनिवृत्ति धारण करने वाले (वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करने वाले) तथा अन्त में योग से शरीर छोड़ देने वाले (सन्यास धारण करने वाले) रघुवंशियों का मैं वर्णन करता हूँ। अधोलिखित श्लोक भी आश्रम व्यवस्था की अनिवार्यता का उद्घोष करता है

आद्ये वयसि नाधीतम्, द्वितीये नार्जितं धनम् ।
तृतीये न तपस्तस्म्, चतुर्थे किं करिष्यति[ii] ।।

ब्रह्मचर्य आश्रम चारों आश्रमों की आधारशिला है। इस आश्रम में रहते हुए विद्यार्थी अपने भौतिक उन्नति के साथ-साथ आध्यात्मिक उन्नति का शुभारंभ कर सकता है। मानव के जीवन में षोडश संस्कारों में उपनयन एवं वेदारंभ तथा समावर्तन यह तीन संस्कार इसी आश्रम के अंतर्गत आते हैं। ब्रह्मचर्य शब्द का अर्थ है – श्रेष्ठ आचरण करना। महाभारत के रचनाकार महर्षि वेदव्यास ने श्रेष्ठ आचरण करने वाले को ही ब्रह्मचारी कहा है और उनके मत में ब्रह्मचारी वह भी है जो गुरु की सेवा करता है, इंद्रियों को वश में रखता है तथा केवल ब्रह्म ज्ञान की इच्छा करता है । ब्रह्मचारी का लक्षण बताते हुए महर्षि वेदव्यास ने आश्वमेधिक पर्व में लिखा है कि-

ब्रह्मचारी सदैवैष य इन्द्रियवये रतः । अपते व्रतकर्मा तु केवलं ब्रह्मणि स्थितः[iii]।

महर्षि वेदव्यास के अनुसार ब्रह्मचारी के लिए ब्रह्म ही सब कुछ है वही अग्नि है, वही समिधा है, वही ब्रह्म से उत्पन्न है, ब्रह्म ही जल है, गुरु ही ब्रह्म है और वह ब्रह्म में ही लीन रहता है-

ब्रह्मैव समिधस्तस्य ब्रह्मनिर्ब्रह्मसम्भवः आपो ब्रह्म गुरुर्ब्रह्म स ब्रह्मणि समाहितः[iv]।

इस प्रकार माना जा सकता है कि ब्रह्मविद्या अथवा ज्ञानरूपी ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए जिस काल में विद्यार्थी श्रेष्ठ आचरण करता है, वह ब्रह्मचर्याश्रम है, और विद्यार्थी ब्रह्मचारी है । अतएव ब्रह्मचर्य

आश्रम में व्यक्ति का मुख्य उद्देश्य विद्याध्ययन है। इस आश्रम में पुस्तकीय ज्ञान का ही नहीं, अपितु व्यवहारिक ज्ञान का भी महत्व है, जो आगे चलकर अन्य आश्रमों के लिए उपयोगी है। हमारे ग्रन्थों में ब्रह्मचारी (विद्यार्थी) के लक्षण इस प्रकार बताए गए हैं-

दण्डानिपानि मेलां चौव धारण गरेद भैमनिष्वात्मवृत्तये।
मेखला च भवेत्माजी जटी नित्योदकस्तथावज्ञोपवीती स्वाध्यायी अलुब्धो नित्यव्रतः[v]।।

अर्थात् समस्त ब्रह्मचारियों को चाहिए कि वह दण्ड, मृगचर्म, यज्ञोपवीत और मूंज की मेखला धारण करें, नित्य स्नान करें, स्वाध्याय करें, लोभ से दूर रहे, नित्य व्रत का पालन करें, ब्राह्मणों के घर भिक्षा मांगे तथा अनिन्दित आचरण करे। भारतीय ऋषियों ने विद्यार्थी के उपर्युक्त लक्षण बताते हुए उसके व्यक्तित्व और सर्वांगीण विकास पर ध्यान दिया है। अर्थात विद के लिए स्वाध्याय अथवा विद्यार्जन ही पर्याप्त नहीं होता, उसकी वेशभूषा अन्य व्यक्तियों से भिन्न होनी चाहिए, उसे स्नान आदि के द्वारा स्वास्थ्य ठीक रखना चाहिए, और अनिन्दित आचरण से मानसिक स्वास्थ्य भी ठीक रखना चाहिए । हमारे आचार्यों ने ब्रह्मचर्याश्रम में प्रवेश हेतु उपनयन संस्कार की सुंदर परिकल्पना की है, जिसका अभिप्राय है विद्यार्जन हेतु ब्रह्मचारी का गुरु के समीप जाना। इस उपनयन संस्कार के सम्बन्ध में मनु और याज्ञवल्क्य ने ब्राह्मण बालक के लिए आठ वर्ष क्षत्रिय के लिए ग्यारह वर्ष तथा वैश्य लिए बारह वर्ष की आयु का विधान किया है -

गर्भाष्टमे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनयनम्गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः[vi]।

उपनयन संस्कार के पश्चात् गुरुकुल में प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों को अधोलिखित कर्तव्यों का पालन करना चाहिए। विद्यार्थी को चाहिए कि वह गुरु के बुलाते ही उसके समीप पढ़ने के लिए जाए, बिना कहे ही उनकी सेवा करे, उनके जागने से पहले जागे, उनके सोने के बाद सोए । वह मृदुल, जितेन्द्रिय, सावधान और स्वाध्यायशील बने । उसका यही आचरण उसे सफल कर सकता है -

आहूताध्यायी गुरुकर्मस्वचोद्य पूर्वोत्थायी चरमं चोपशायी ।
मृदुर्दान्तो धृतिमानप्रमत्तष्वाध्यायशीलः सिध्यति ब्रह्मचारी[vii] ।।

इस श्लोक से स्पष्ट है कि शिष्य के अनुकूल आचरण और निष्ठा से प्रसन्न होकर गुरु प्रसन्नतापूर्वक उसे शिक्षा देते थे और मार्गदर्शन करते थे। अध्ययन के समय विद्यार्थी का जीवन त्याग तथा तपोमय होना चाहिए, इस समय उसे आलस्य, निद्रा, तंद्रा का परित्याग कर देना चाहिए और सुख की इच्छा नहीं करनी चाहिए। क्योंकि तभी वह सावधान मन से वेदादि का अध्ययन तथा मनन कर सकता है-

सुखार्थिनः कुतो विद्या विद्यार्थिनः कुतो सुखम्।
सुखार्थी वा त्यजेद् विद्या विद्यार्थी वा त्यजेत्सुखम्[viii] ।।

प्राचीन काल में भिक्षाटन भी गुरुकुल में रहने वाले विद्यार्थी का कर्तव्य था। इस नियम का उद्देश्य यह था कि विद्यार्थी नम्र बने अन्य विद्यार्थियों से अपने को ऊँचा या नीचा ना समझे, अपने लिए और अपने आश्रम के लिए अर्थोपार्जन करे। इसलिए विद्यार्थी का कर्तव्य निर्धारित कर दिया गया कि शिक्षा में प्राप्त अन्न वह अपने गुरु को सौंप दे और उन्हीं से आज्ञा पाकर उसका उपभोग करे-

"गुरुशुश्रूषां भैक्ष्यं विद्यार्थी ब्रह्मचारिणः[ix]"

अध्यात्मिक रहस्य का श्रवण करना, वेद विहित नियमों का पालन करना, गुरु सेवा करना, स्वाध्यायशीलता और ब्रह्मचर्याश्रम के नियमों का पालन करना, यह भी विद्यार्थी के आवश्यक कर्तव्य हैं-

रहस्यश्रवणं धर्मो वेदव्रतंनिषेवणम्।
अग्निकार्यं तथा धर्मो गुरुकार्यप्रसाधनम्[x]।।

इसके साथ-साथ महाभारतकार ने विद्यार्थी को यह भी उपदेश दिया है कि वह वेदमन्त्रों का चिंतन एकाकी ही करें, वेदमन्त्रों का जप एकाकी ही करें, इस स्थिति में एक ही आचार्य की सेवा में रत रहें, मन और इंद्रियों को वश में करते हुए दीक्षा का पालन करें, वेदों का स्वाध्याय करें, अपने लिए निर्धारित कर्तव्यों को करें, तथा गुरु के ही आश्रम में निवास करें-

स्मरन्नेको जपन्नेकः सर्वानेको युधिष्ठिर एकस्मिन्नेव चाचार्ये शुश्रुषुर्मलपकवान्[xi]।।

हमारे आचार्यों ने विद्यार्थी को सत्कर्मों की ओर ही प्रेरित किया है। उसे दुष्कर्मों से बचने का उपदेश दिया है। अध्ययन में बाधक तत्वों से दूर ही रहने का आदेश दिया है। भोग विलास उसके लिए त्याज्य माना है। महर्षि वेदव्यास ने ब्रह्मचर्य के चार चरणों का वर्णन करके ब्रह्मचारी अर्थात विद्यार्थी के कर्तव्यों पर प्रकाश डाला है-

गुरुं शिष्यो नित्यमभिवादयीतत्वाध्यायमिच्छेच्छुचिरप्रमत्तः ।
मानं न कुर्यानादधीतरोपमेष्प्रथमो ब्रह्मचर्यस्य पादः[xii]।

1. विद्यार्थी गुरु को नित्य अभिवादन करें, पवित्र और प्रमादरहित होकर स्वाध्याय की इच्छा करे, अभिमान ना करें, मन में क्रोध न करे,यह विद्यार्थी का प्रथम चरण हैं। इस प्रकार शिष्यवृत्ति के

कर्म से, पवित्र आचरण करने वाला जो छात्र विद्या प्राप्त करता है तो वह ब्रह्मचर्याश्रम का प्रथम चरण कहलाता है।

2. विद्यार्थी का दूसरा चरण है कि विद्यार्थी अपने कर्म, मन तथा वाणी से अपने प्राण और धन से भी गुरु का प्रिय करे। वह गुरु के समान ही उनकी पत्नी तथा पुत्र का भी आदर करे ।
3. अपने गुरु ने जो किया है, उसे जाने और उससे जो कार्य सिद्ध हुए हैं, उनका विचार करते हुए, मन ही मन प्रसन्न होकर यह समझे कि गुरु ने ही मुझे उन्नत किया। यही विद्यार्थी का तृतीय चरण हैं।
4. आचार्य के उपकार का ऋण चुकाए बिना अर्थात् उन्हें दक्षिणादि दिये विना विद्यार्थी को आश्रम नहीं छोड़ना चाहिए, और दक्षिणा देकर भी मन में यह न सोचें कि मैं गुरु पर बड़ा उपकार कर रहा हूँ और मुँह से भी दक्षिणा देने की चर्चा ना करे। विद्यार्थी का यह चौथा चरण है।

महाभारत में वर्णित ब्रह्मचर्य की उपर्युक्त चार चरण विद्यार्थी को गुरु भक्ति की अनुकरणीय शिक्षा देते हैं। विद्यार्थी अपनी आयु का चौथाई भाग ब्रह्मचारी के रूप में गुरुकुल में व्यतीत करे, वहाँ रहते हुए वह किसी की भी निन्दा ना करे, धर्म तथा अर्थ को समझे, और गुरु तथा गुरु पुत्र की सेवा करें-

आयुषस्तु ब्रह्मचार्यनसूयकः ।
गुरौ वा गुरुपुत्रे वा वसेद् धर्मार्थकोविदः[xiii]**।।**

निष्कर्ष -

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि ब्रह्मचर्य चारों आश्रमों की आधारशिला है जिस पर संपूर्ण जीवन चलता है । ब्रह्मचर्य योग के आधारभूत स्तंभों में से एक है। ब्रह्मचर्य का पालन करने से मनुष्य की आध्यात्मिक शक्ति का विकास होता है। विश्व में समस्त धर्मों में ब्रह्मचर्य को एक पावन पवित्र धर्म माना गया है। जीवन के ऊंचे से ऊंचे स्थान को प्राप्त करने के लिए विद्यार्थी के लिए ब्रह्मचर्य से बढ़कर अन्य कोई उपाय नहीं हो सकता। एक सच्चा ब्रह्मचारी में अपारशक्ति होती है जो व्यक्ति सच्ची श्रद्धा से ब्रह्मचर्य का पालन करता है वह पूज्य बन जाता है। ब्रह्मचारी दीर्घ जीवी होता है, उसका शरीर स्वस्थ रहता है, उसका मन प्रसन्न रहता है, तथा उसकी बुद्धि भी स्वच्छ एवं अत्यंत पवित्र रहती है, इसीलिए चारों आश्रमों की आधारशिला ब्रह्मचर्य आश्रम का पालन करना चाहिए। विद्यार्थियों को भावी जीवन के लिये शिक्षा ग्रहण करनी होती है। ब्रह्मचर्य से असाधारण ज्ञान पाया जा सकता है। वैदिक काल और वर्तमान समय के सभी ऋषियों ने विद्यार्थियों को इसका अनुसरण करने का उपदेश किया है।

संदर्भ सूची:

- वामन शिवराम आप्टे। *प्रायोगिक संस्कृत-हिन्दी कोश*। मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, 2014।
- आर.एस. शर्मा। *प्राचीन भारत में शिक्षा प्रणाली*। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, 2002।
- डॉ. राधाकृष्णन। *भारतीय दर्शन*। भाग-1, ओक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1923।
- श्रीराम शर्मा आचार्य। *गायत्री और ब्रह्मचर्य*। युग निर्माण योजना प्रेस, 1995।
- पं. राजबली पांडेय। *हिन्दू संस्कार*। मोतीलाल बनारसीदास, 1969।
- डॉ. सुरेंद्रनाथ दासगुप्त। *भारतीय दर्शन का इतिहास*। भाग-1, मोतीलाल बनारसीदास, 1997।
- आचार्य चतुरसेन शास्त्री। *प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था*। हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1985।
- डॉ. रामकुमार वर्मा। *भारत का सांस्कृतिक इतिहास*। प्रभात प्रकाशन, 2004।
- स्वामी शिवानंद। *ब्रह्मचर्य – जीवन की आधारशिला*। डिवाइन लाइफ सोसाइटी, ऋषिकेश, 1997।
- प्रो. एस.एन. गोयल। *भारतीय शिक्षा का इतिहास*। विनोद पुस्तक मंदिर, 1981।
- डॉ. के.पी. जायसवाल। *वैदिक संस्कृति और समाज*। भारती प्रकाशन, वाराणसी, 2000।

---

[i] रघुवंशम् 1\8
[ii] महाभारत, शान्तिपर्व 192\4
[iii] महाभारत, आश्वमेधिकपर्व 15\16
[iv] महाभारत, आश्वमेधिकपर्व 26\18
[v] याज्ञवल्क्यस्मृति, आचार अध्याय 29
[vi] मनुस्मृति 2\36
[vii] महाभारत, आदिपर्व 91\4
[viii] महाभारत, उद्योगपर्व 6\4
[ix] ब्रह्माण्डपुराण 2\7
[x] महाभारत अनुशासनपर्व 2\141
[xi] महाभारत, शान्तिपर्व 61\18
[xii] महाभारत, उद्योगपर्व 44\10
[xiii] महाभारत, शान्तिपर्व 252\16